Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
VOL- VIII ISSUE- II FEBRUARY 2021 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 7.149 ISSN 2349-638x

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में उपभोक्तावादी संस्कृति का स्वरूप

माण्डवी पाठक
शोधार्थी
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

भारत में नारी विषयक होने वाले परिवर्तनों में उन्नीसवीं सदी का विशेष महत्व रहा। मुसलमानों के शासन काल में नारी जाति के विकास का मार्ग अवरूद्ध हो गया था। सामाजिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं हिन्दू धर्म की परम्पराओं को भारी आघात पहुँचा था। मुसलमानों के अत्याचारों के कारण हिन्दू समाज नियति अनिश्चित होती गई। विशेष रूप से महिलाओं की स्थिति इस युग में दयनीय हो गई थी। उनका जीवन नरकीय बन गया था।

अस्सी के बाद बहुतेरी स्त्रीवादियों ने गृहस्थी और श्रम के भौतिक बाजार का विश्लेषण करने के बजाय भाषा की संरचना, प्रतिनिधित्व का अधिकार तथा के विमर्श का प्रश्न उठाया इनमें प्रमुख रूप से महिला कार्यकर्ता आवेंड और एलिस शामिल थीं। इन नारी वादियों ने विशेल फूको के विचारों को अपने आन्दोलन में शामिल कर लिया और अपना झुकाव सत्ता के विमर्श की ओर कर लिया। उत्तर औपनिवेशिक नारीवादी सिद्धान्तकारों में गायत्री स्पीवाक वुडलेक्सी आदि मशहूर हुई।

उपभोक्तावादी संस्कृति ने तथा सामाजिक परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप स्त्रियों की दयनीय दशा में सुधार हेतु अनेकों संस्थाएँ और धार्मिक मिशनरियाँ सामने आयीं। सती प्रथा, विधवा जीवन के त्रासदी भरे अमानुषिक परम्परा पर आहूती दी गयी। विधवा पुनर्विवाह पर बल दिया जाने लगा।

"उपभोक्तावादी आजादी के साथ-साथ शोषित अस्मिताओं के हक और सम्मान की समानान्तर वकालत शुरू हुई थी। गाँधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन की लड़ाई में भारतीय महिलाओं को शामिल करके इसे सम्पूर्ण देशव्यापी आन्दोलन बना दिया था। साथ-ही-साथ महिलाओं के उत्थान के लिए गाँधी जी के चलते, गाँधीवादी विचार धारा के अनुयायी महिलाओं की दशा में सुधार के लिए आगे आये। स्त्रियों को कम-से-कम एक मनुष्य होने के नाते सम्मानित जीवन जीने के अधिकार के उपरान्त महिलाओं ने सर्वप्रथम अपनी हैसियत को वेदों, उपनिषदों, धर्म ग्रन्थों के साथ इतिहास में पड़ताल जारी रखी तथा अपनी अवनति के कारणों पर पुनः विचार करना आरम्भ किया।"[1]

स्त्री के यथार्थ सीमित हैं तो भी यही यथार्थ उसका अपना है, यहीं उसके अस्तित्व की अपभोक्तावादी सांस्कृतिक सच्चाई है। विकास का नियम अपनी जड़ों को छोड़कर नहीं चलता। एक पौधा भोजन के लिए अपनी ही जमीन को वापस जाता है और वहीं से पनपने का आधार पाता है। देखना यह है कि कहीं वह उसी जमीन में ठहर तो नहीं जाता जहाँ वह मात्र बीज या अंकुर रूप है। यहाँ भी महत्व है तो इस बात का कि क्या वह अपनी जमीन में ही डूब तो नहीं जाती? क्या उसका लेखन उसके अपने अस्तित्व और परिवेश से आगे की यात्रा करता दिखता है? या वह अपनी परिस्थितियों का अपनी योग्यता से अतिक्रमण कर पा रही है? प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति का डंका बजाने वाली २१वीं सदी की नारी के दामन में आज भी फूल नहीं काँटों की सौगातें भरी हैं। जहाँ वह अपनी कुण्ठाओं और संकीर्णताओं से लड़ रही है, पुरातन कूड़मगज मान्यताओं ने उसकी राह रोकी है, समाज की सोच के दायरे उसे आगे बढ़ने से रोकते हैं तो उपभोक्तावादी की मानसिकता का आंतक नारी मन को पीड़ित कर जाता है। नारी की पीड़ाओं के अनेक विशालकाय पर्वत खड़े हैं।

समाज में अनेक स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो यदि अपने पति से प्रेम नहीं करती तो किसी अन्य से भी अनुराग नहीं रखती, प्रत्येक पारिवारिक कर्तव्य से मुँह मोड़ते हुए, स्वयं को पूर्णतः आडम्बर और दुर्व्यसन के हवाले कर देती है। यही नहीं, उस समस्त धन को भी उड़ा देती है जिसे अपनी असहाय छोटी सन्तानों के लिए बचाकर रखना अभीष्ट था, इसके बावजूद अपनी बेदाग ख्याति के लिए स्वयं पर अभिमान करती हैं, मानों पत्नी और माता के रूप में उनके कर्तव्य का समग्र विस्तार उसे संरक्षित रखने में ही हो। कई अन्य अकर्मण्य स्त्रियाँ प्रत्येक व्यक्तिगत कर्तव्य की उपेक्षा करते हुए, यह समझती है कि वे अपने पति के प्रेम की मात्र इसीलिए अधिकारी है, क्योंकि इसे उन्होंने औचित्यपूर्ण ढ़ंग से निवेदन किया है।

इस दशक के बाद बहुतेरी नारीवादियों ने गृहस्थी और श्रम के बाजार के भौतिक विश्लेषण के बदले भाषा की संरचना, प्रतिनिधित्व का अधिकार एवं समस्या तथा सत्ता के विमर्श पर प्रश्न उठाये तथा वैश्विक स्तर पर सामाजिक संरचना पितृसता और पूँजीवाद के विश्लेषण के बदले विभिन्न संस्कृतियों के विमर्श, विचारधारा और मनोविश्लेषण को प्रस्तुत किया।

"विधानसभा से लेकर लोकसभा तक मर्सिया पढ़े जाएँगे। अखबार और टी.वी. वालों की चाँदी हो जाएगी। समाजसेवी संस्थाएँ अलग झंडियाँ ले लेकर दौड़ पड़ेगी। उनका चलना, फलना, फूलना ऐसी ही घटनाओं पर टिका रहता है। देखना कि कैसे उस लड़की के हगने-मूतने से लेकर महीनादारी तक का हिसाब रखती है और सबसे ज्यादा करीबी सिद्ध होती है। अनुदान पचाने के नायाब तरीके। अपने-अपने दावा ऐना न होता, तो देश के बड़े-से-बड़े साधु-तांत्रिकों के लंगोट कौन चीर पाता? हमारे मण्डल को कमण्डल में धरकर बेतवा में सिराने वाले लोग. .....।"[२]

अनेक समाजशास्त्रियों और विचारकों ने पाया है कि उपभोक्तावादी और परजीविता को बढ़ावा देने वाली व्यवस्था से नारी मुक्ति आदि मूल्यों के प्रसार के लिए अवकाश कम है। पूरनचन्द जोशी यह मानते हें कि-'नये सांस्कृतिक मूल्यों को जिनमें नारी के प्रति आदर एवं नारीमुक्ति स्वयं सर्वश्रेष्ठ मूल्य है, तब तक नहीं बढ़ाया जा सकता है जब कि परजीविता को प्रोत्साहन देने वाली आर्थिक व्यवस्था के स्थान पर श्रम, उद्यम, सहयोग और भागीदारी पर आधारित आर्थिक व्यवस्था की स्थापना नहीं होती। उपन्यासकारों का नारी-विमर्श भी सोच की पुष्टि करता है।

स्त्री मुक्ति के सही मायने मेरे विचार में पराधीनता की उन बेड़ियों से स्त्री मुक्ति से है। पितृसत्तात्मक, पुरूष-वर्चस्ववादी, धर्म और धर्मशास्त्र सम्मत इस सामाजिक संरचना कें उसे जकड़े हुए है, उसकी अस्मिता की उस बहाली से है जो धर्म और धर्मशास्त्र सम्मत विधानों के चलते वाहत और शत विक्षृत है। स्त्री मुक्ति या स्त्री विमर्श का मतलब पुरूष वर्चस्व, पुरूष दर्प पुरूष मानव की विकृत सोच से सभी की मुक्ति है न, कि स्त्री-पुरूष सम्बन्धों से उसकी मुक्ति। भारत में जाति, धर्म, वर्ग आदि के कारण सामाजिक विषमता पायी जाती है। स्वातन्त्योत्तर काल में अनेक समाज सुधारक, साहित्यिक तथा क्राँतिकारकों ने भारत में सामाजिक सुधार करने का प्रयास किया। आर्य समाज, ब्रह्मों समाज ने सति प्रथा, विधवाओं का पुनर्विवाह, कर्मकाण्ड, रूढ़ी परम्परा, जातिभेद आदि को समाप्त करने का प्रयास किया महात्मा फुल ने स्त्री शिक्षा का प्रचार किया। समाजसेवी संस्थाओं ने सामाजिक कुरीतियों को मिटाने में सफलता पाई।

लेखिका के उपन्यासों में उपभोक्तावादी संस्कृति का चित्रण लेखिका ने बहुत ही कुशलता से किया है। "विराटा के लोगों ने कब सोचा होगा कि उनके जीवन काल में ऐसी घटना घटेगी, जैसी कहानी किस्सों में सुनते आए हैं? कोई स्त्री दाँगी नरपत की बेटी की की तरह अपने सतीत्व पर निछावर हो जाएगा। यह उन लोगों की कल्पना के बाहर की की बात थी, क्योंकि अब तब जो हत्याओं-आत्महत्याओं का सिलसिला चला आ रहा था, वह या तो हादसा माना जाता या लाज शर्म निभाने की बाध्यता कभी-कभी पागलपन भी घोषित कर दिया जाता। बेतवा में जल समाधि लेनेवालियों को टक्कर देती हुई यह सती सर्वमान्य सर्वपूज्य होगी। हवेली का सिर आज बहुत ऊँचा था।"[३]

आर्थिक स्तर समाज में प्रमुख माना जाता है। आज के उपभोक्तावादी युग में तो धन को महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। आर्थिक सत्ता जिसके पास है उसी को समाज में सम्मान मिलता है। भारत में अधिकांश

समाज में पित्रसत्ता होने के कारण परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी पुरूष वर्ग के पास होती है। अन्तः नारी आर्थिक दृष्टि से पुरूष पर आधारित होने के कारण उसका आर्थिक स्तर कमोजर ही है।

बाजारवाद व उपभोक्तावाद का जो सर्वग्रासी रूप सुरक्षा के मुख की भाँति दिनोदिन फैलाता जा रहा है, उसे लेखिका ने सर्वपक्षी रूप में विश्लेषित किया है, बढ़ते उपभोक्तावाद ने विशेष कर आजकल की स्त्रियों की सोच व नजरियें में पर्याप्त परिवर्तन ला दिया है जिसके कारण स्त्री-पुरूष दोनों ही 'सर्वजन हिताय' की बात न सोचकर अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं और खुशियों को प्राथमिकता देने लगे हैं। आकांक्षाओं और महत्वाकांक्षाओं का स्थान जीवन में किसी भी वस्तु की अपेक्षा सर्वोपरि है। एक कार्यशील महिला को अपनी जीवन मे ंदोहरी भूमिका निभानी पड़ती है घर परिवार और अपने कामकाज के बीच तालमेल बैठाना पड़ता है। ऐसा नहीं है कि स्त्री का कामकाजी होना दाम्पत्य जीवन पर केवल प्रतिकूल प्रभाव ही डालता है ये प्रभाव अनुकूल भी हो सकता है तथा प्रतिकूल भी परन्तु यह भी अवमानवीय तथ्य कदापि नहीं कहा जा सकता कि महिला का काममाजी जीवन उसके पारिवारिक जीवन को कुछ क्षण तक प्रभावित तो जरूर करता है। वैवाहिक सम्बन्ध, समर्पण, त्याग, सामंजस्य, की माँग करते हैं, और कार्यक्षेत्र कुशलता, प्रतिस्पर्धा की भावना तथा प्र्याप्त समय की माँग रखता है, इन दोनों परिस्थितियों में सामंजस्य बैठाने के चक्कर में आपसी टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है जो कि सम्बन्धों में कटुता का बीज बोने मे ंसहायक बन जाती है। मैत्रेयी ने समाज में निरन्तर फैल रहे उपभोक्तावाद के दंश को एवं उससे उत्पन्न संस्कृति की बदलती छवि को अपने लेखों में स्पष्ट किया है। उन्होंने अपने लेखन में किसी कल्पना का सहारा नहीं लिया, बल्कि यथार्थ वर्णन किया है। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में उन्हीं कि कलम से उद्धृत वाक्य ''इसमें शक नहीं कि गाँव से लेकर शहर तक हर चीज राजनीति से जुड़ी हुई है, और राजनीति ही शासन तन्त्र की संचालक बनी हुई है। तब शासन का रूप बनता है भ्रष्ट, आँखों पर पट्टी बाँधे अज्ञान से भरा हुआ मूढ़... और यही मनुष्यों की नागरिकता के हक का रखवाला है। वरन् लोगों की खुशी-चैन से जीने की तमन्नाये हलाल होती? स्वतंत्रता का इतिहास और संविधान की नीतियों का अध्ययन करते हुए मेरा मन नहीं मानता था कि यहाँ आजादी आई है। मुझे लग रहा था अपना असन्तोष जताने और अपनी बात कहने के लिए मुझे उपन्यास ही लिखना होगा। उपन्यास के जरिए बात भी समझ में आएगी और सम्बन्धित मंत्री-सन्तरियों को अपने सम्मान में मेरी गुस्ताखी भी न लगेगी।''[४]

भारतीय जन-जीवन में उपभोक्तावादी जैसे विसक्त प्रभाव को समझाने का प्रयास लेखिका ने अपने उपन्यासों के माध्यम से सरलता के साथ छोटे-छोटे तथ्यों को लेकर अपनी रचना को नवीन आयाम प्रदान किया है उन्होंने उपभोक्तावाद भी समस्या को एक वृहद फलक प्रदान किया है। यह सत्य है कि उपभोक्तावाद की संस्कृति का रूप सदा एक सा नहीं रहता, उसमें परिवर्तन होते रहते हैं और यह परिवर्तन भारतीय समाज में भी हुआ है। सबसे अधिक इस सामाजिक परिवर्तन से कुछ प्रभावित हुआ तो वह है नारी जगत स्वतन्त्रता के पश्चात् नारी चेतना बड़ी तीव्रता से जागृत हुई। नारी कटिबद्ध हुई कि उसे भी अब कुछ करना होगा। मात्र मंदिर की प्रतिमा नहीं रह गई, न घर की अन्नपूर्णा, न सास-ससुर की मुफ्त नौकरानी. न अस्तित्वविहीन समर्पित माँ। अब उसके पास अपना अस्तित्व था और उसे पहचानने का प्रयास। अब घर और बाहर में विभाजित नहीं थी, बल्कि कुशलता पूर्वक अपने दोयम कर्त्तव्य को निभाने की चेष्टा, में रत थी। शहरीकरण, औद्योगीकरण और आर्थिक दबावों की वजह से संयुक्त परिवारों के टूटने-बिखरने की सामाजिक और ऐतिहासिक प्रक्रिया पहले से अधिक तेज हुई और छोटा परिवार सुख का आधार माना जाने लगा। राजनीतिक, आर्थिक और पारिवारि स्तर पर संविधान, कानून, शिक्षा और जनचेतना के कारण व्यक्तिगत सम्बन्धों और परम्परागत विवाह संस्था के स्वरूप, स्वभाव और स्थितियों में निरन्तर परिवर्तन भी हुआ है। उपभोक्तावाद ने ग्रामीण जन-जीवन के बीच अपना पैठ जमा के रखी है। जिसने अपना विस्तारवादी प्रकृति से वास्तविकता एवं गल्प के अन्तर को मिटा डालने में समक्ष हुआ है। ग्रामीण आंचल की रचनाओं का सृजन करते हुए सर्वहारा वर्ग एवं भोले-भोल गाँव के लोगों के बीच उपभोक्तावाद की जड़े भीतर ही भीतर सामान्य जन को खोखला करती है। मैत्रेयी

के उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' कबूतरा जन-जाति की कथा के बची समान्य जन-जीवन जीने वाले जन-जाति जीने वाली कबूतरा सम्प्रदाय पर केन्द्रित है।

''साले, तू रिपोर्ट कर, पुलिस में जा, कचहरी का दरवाजा खटखटा, सब बेकार। अखबार में तो हम खुद ही छँपवा देगें। इशारों में अपना अता-पता दे देगें। पराक्रम का प्रचान न होगा तो हमें कौन पूछने आएगा? राजनीति में दाँव लगाएँगे, भाव बढ़ेगें। यह घोषणा उनके फायदे की जितनी भी रही हो, धीरज के प्राण खींचने के लिए काफी थी। उसके भविष्य तक पर काबू कर लिया। लगा कि श्वासनली में हवा नहीं, डामर है, चेतना जड़ हो गई। हमें बचाने वाला कोई नही हम खुद भी नहीं.....बंद कर दो सोचना।''[५]

वर्तमान समय में उपभोक्तावाद, औद्योगिकीयकरण और नागरिकरण के हवा का झोका आत्ममग्न, कृषि प्रधान, पारम्परिक परिवारों में क्या आया कि उनके स्वयं के पारम्परिक व्यवसाय घर जीविका आदि के साधन में भी निरंतर बदलाव आते गए। अपने उपन्यासों में समाज के विभिन्न पहलुओं को दर्शाने की कुशलता लेखिका को एक सफल रचनाकार के रूप में प्रस्तुत करती है।

''जिस दुनिया की तुम बात करते हो, वह कहाँ है? तुमने हमें सिखाया नहीं, भरमाया है। बनाया नहीं, धोखा दिया है। अब हम कमाएँगे पैसा सिर्फ पैसा। ईमानदारी और मेहनत की बाते खोखली हैं आज। पैसे के बिना कोई खुशी हासिल नहीं हो सकती है। शहर तो शहर गाँवों में भी वह दिन आ रहा है, जब बिना पैसे के एक गिलास पानी नसीब न होगा। खेत-खलिहानों की मोह-माया हमें मत दिखाओ। उन्हें बेचकर हमें ऐसी नौकरी हासिल करती है, जिसके चलते लाखों करोड़ो कमाएँ। संसार के ऐशो-आराम हम भी तो देखें। देखे कि दूसरों के घरबार गिरबी धरने में कौन-सा मजा मिलता है, कि सिक्के से सिक्का पैदा करने में जी कितना हरा-भरा रहता है? अयोग्यों के पास जितना धन है, उससे कई-कई गुना ज्यादा चाहिए हमको, क्योंकि हम उनके मुकाबले उसके हकदार ज्यादा हैं।''[६]

आजादी के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं को सफल बनाने के लिए सरकार का ध्यान मशीनीकरण और नए-नए अविष्कारों की ओर पहुँचा। नित नई योजनाएँ, दुर्गापुर, भाखड़ा, दामोद घाटी परिकल्पित हुई एवं कार्यान्वित भी हुई। औद्योगिक-प्रतिष्ठानों के लिए सरकार ने जमीन खरीदनी शुरू की, कृषि के विकास और पुनरूत्थान में राष्ट्र ने कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी। पूँजीपतियों और जमींदारों से छुटकारा दिलाने के लिए मजदूर वर्ग और कृषक वर्ग की सुविधाओं को कानूनी संरक्षण देना शुरू किया। किसान अपने खेत के मालिक स्वयं बनने लगे। मजदूर अपने को शोषण से मुक्त समझने लगे। उपभोक्तावाद ने औद्योगिकीकरण के नाम पर किसानों की जमीनें छीन लीं। तब यह कृषक वर्ग शहरों को जाने लगा और इस वर्ग से एक नष्ट श्रमिक वर्ग का जन्म हुआ।

''उपन्यासकार ने स्वतंत्रता के बाद भी इन दीमकों को सक्रिय देखकर उनके उन्मूलन के लिए वैचारिक वातावरण बनाने में बहुत योगदान दिया है। मानव और मानव के बीच कुल, सम्पत्ति और धर्म के आधार पर विभाजन से जो हानि हुई है उससे उपन्यासकार पूर्णतया अवगत है। स्वतंत्रता के बाद हुई शिक्षा के प्रचार-प्रसार के बावजूद भारतीय ग्रामांचल के निवासियों पर पुरानी मान्यताओं और रूढ़ियों की पकड़ आज भी मजबूत है। इस स्थिति का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह निकला है कि गाँव और कस्बे का आदमी बौद्धिक, चतुर और काइयाँ तो हुआ है लेकिन उसका भाव-जगत बुरी तरह आहत है और बहुत-सी संकीर्णताओं और अनीतियों को ढ़ोने के लिए विवश है।''[७]

उपभोक्तावाद ने स्वातन्त्र्योत्तर भारत में सबसे अधिक परिवर्तन नगरों में किया है। शहरी यथार्थ का अहसास कराने के लिए तटस्थ और निर्मम दृष्टि का होना आवश्यक है। उपभोतावादी रचनाओं के विषय में मैत्रेयी पुष्पा एवं उनके उपन्यासों का नाम साहित्य के धरातल पर व्यापकता से लिया जाता है। उन्होंने आज के बदलते हुए परिवेश में पुराने और परम्परागत मान्यताओं को भी विधिवत कलमबद्ध किया है। शहरों में जीवन अनेक प्रकार की विसंगितियों से ग्रस्त हैं, अनेक सामाजिक और राजनीतिक समस्याएँ इसे घेरे हुए हैं, लेकिन नगर के कथाकार नगरव्यक्ति के कुछ आधुनिक कहे जा सकने वाले मानसिक तनावों, अकेलेपन के बोध और संत्रास तथा

यातना की अनुभूति को जितनी अभिव्यक्ति दे रहें हैं उतनी उसकी सामाजिक-राजनीतिक समस्या की नहीं।

''गाँव में यह बात ओर से छोर तक फैल गई कि अब गए मशीनवालों के दिन। क्रैशरवाले डॉक्टर का कहना नहीं मानेगें तो एक-एक को जेल हो जाएगी। इनकी एक-एक जालसाजी रपट में लिखेगा डॉक्टर। छोटे ठेकेदार जो सोलिंग (मोटा पत्थर) सप्लाई करते हैं, वे भी पकड़े जाएँगे मजूरों की पगार में हेरा-फेरी करते हैं और लो, शराब के ठेके तो आते ही हटवा दिए डॉक्टर ने जो मजूर शराब पीता पकड़ा जाएगा उसको भी हवालात में भेज दिया जाएगा।''[८]

संदर्भ-

[1] डॉ. राम बिहारी सिंह तोमर, सामाजिक संरचना एवं सामाजिक गति।
[2] अल्मा कबूतरी, पृ. 312, मैत्रेयी पुष्पा।
[3] अगनपारवी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 170
[4] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 293
[5] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 319
[6] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 103
[7] समकालीन हिन्दी उपन्यास, डॉ. प्रेम कुमार, पृ. 74
[8] इदन्नमम्, मैत्रेयी पृष्पा, पृ. 371